REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 8 | MAY - 2026

दलित आत्मकथाओं के स्वरूप एवं संवेदना का अध्ययन

रामजी पटेल
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. निर्मला साहू
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
श्री दयाराम शिक्षा महाविद्यालय सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

हिन्दी दलित साहित्य में आत्मकथा–विधा का विशेष महत्व है, क्योंकि यह विधा सीधे–सीधे जीवन के यथार्थ से जुड़ी होती है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के अनुभवों, संघर्षों, पीड़ाओं तथा उपलब्धियों को बिना किसी आडंबर के प्रस्तुत करता है। दलित आत्मकथाएँ इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं कि इनमें केवल व्यक्तिगत जीवन का वर्णन नहीं होता, बल्कि वे सामूहिक दलित अनुभवों की प्रतिनिधि बनकर सामने आती हैं। इस प्रकार ये आत्मकथाएँ 'व्यक्ति' से 'समाज' की ओर विस्तारित होती हैं और एक व्यापक सामाजिक दस्तावेज का रूप ग्रहण करती हैं।

मुख्य शब्द – हिन्दी दलित साहित्य, आत्मकथा, जीवन के अनुभव, संघर्ष, पीड़ा एवं सामाजिक दस्तावेज।

प्रस्तावना –

भारतीय समाज की संरचना में निहित जातिगत असमानताओं और सामाजिक विषमताओं ने दलित वर्ग के जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। इस ऐतिहासिक यथार्थ ने न केवल सामाजिक संबंधों को विषम बनाया, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी दलितों को लंबे समय तक वंचित रखा। आधुनिक काल में शिक्षा, जागरूकता तथा सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से दलित समाज में जो आत्मचेतना विकसित हुई, उसने साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक नया आयाम प्रदान किया। इसी परिप्रेक्ष्य में दलित आत्मकथाएँ एक सशक्त विधा के रूप में उभरकर सामने आई हैं।

दलित आत्मकथाओं का स्वरूप परंपरागत आत्मकथाओं से भिन्न और विशिष्ट है। जहाँ सामान्य आत्मकथाएँ प्रायः व्यक्तिगत उपलब्धियों, अनुभवों और आत्म–विश्लेषण तक सीमित रहती हैं, वहीं दलित आत्मकथाएँ व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से सामूहिक सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करती हैं। इनमें 'मैं' का स्वर 'हम' की व्यापकता में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ केवल एक व्यक्ति की कथा नहीं, बल्कि पूरे दलित समाज की जीवन–गाथा का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इन आत्मकथाओं की संवेदना अत्यंत गहन, मार्मिक और यथार्थपरक होती है। इनमें पीड़ा, अपमान, संघर्ष, विद्रोह, अस्मिता और आत्मसम्मान की खोज जैसे भाव प्रमुख रूप से अभिव्यक्त होते हैं। यह संवेदना किसी कृत्रिम या कल्पित धरातल पर नहीं, बल्कि जीवन के कटु अनुभवों से उपजती है, जो पाठक को भीतर

तक झकझोर देती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, श्योराज सिंह बेचैन की मेरा बचपन मेरे कंधों पर तथा मोहनदास नैमिशराय की अपने–अपने पिंजरे में यह संवेदना अपने सर्वाधिक सशक्त रूप में अभिव्यक्त होती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से दलित आत्मकथाओं का स्वरूप और संवेदना सामाजिक संरचना, शक्ति–संबंधों तथा सांस्कृतिक वर्चस्व के प्रति एक स्पष्ट प्रतिरोध का संकेत देती है। ये कृतियाँ न केवल शोषण और अन्याय को उजागर करती हैं, बल्कि उसके विरुद्ध संघर्ष और परिवर्तन की चेतना भी विकसित करती हैं। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ साहित्य को केवल भावात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन के एक सक्रिय माध्यम के रूप में स्थापित करती हैं।

दलित आत्मकथाओं का स्वरूप एवं संवेदना हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट, सशक्त और परिवर्तनकारी साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित होती है, जिसका मूलाधार अनुभव की प्रामाणिकता, सामाजिक यथार्थ का निर्भीक उद्घाटन तथा मानवीय अस्मिता की खोज है। दलित आत्मकथा, परम्परागत आत्मकथा की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए, केवल व्यक्ति–विशेष के जीवन–वृत्तांत का प्रस्तुतीकरण नहीं करती, बल्कि वह उस व्यापक सामाजिक संरचना का अनावरण करती है, जिसमें जाति–आधारित भेदभाव, वंचना और असमानता गहराई से अंतर्निहित हैं। इस दृष्टि से दलित आत्मकथाएँ 'व्यक्तिगत' को 'सामाजिक' और 'निजी' को 'सार्वजनिक' में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया का सशक्त उदाहरण हैं। इनका स्वरूप यथार्थवादी, अनुभवप्रधान, प्रतिरोधात्मक और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध है, जिसमें जीवन के कटु, असह्य और अपमानजनक अनुभवों को बिना किसी अलंकरण या आडम्बर के प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रस्तुति साहित्यिक सौन्दर्य की परम्परागत अवधारणाओं को चुनौती देती है और एक ऐसे 'नए सौन्दर्यशास्त्र' का निर्माण करती है, जिसकी आधारभूमि पीड़ा, संघर्ष और विद्रोह है।[1]

दलित आत्मकथाओं के स्वरूप की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी 'अनुभवजन्य प्रामाणिकता' है। यहाँ लेखक किसी कल्पना या आदर्शवाद का सहारा नहीं लेता, बल्कि अपने जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों को केन्द्र में रखता है। इस प्रकार ये आत्मकथाएँ 'जीवन–सत्य' की साक्षी बन जाती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन में वर्णित घटनाएँ–स्कूल में झाड़ू लगवाया जाना, जातिगत अपमान और सामाजिक बहिष्कार–सिर्फ लेखक के व्यक्तिगत अनुभव नहीं हैं, बल्कि वे पूरे दलित समाज की साझा स्मृतियों और पीड़ाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसी प्रकार तुलसीराम की मुर्दहिया[2] तथा मोहनदास नैमिशराय[3] की अपने–अपने पिंजरे में भी अनुभव की यही प्रामाणिकता दिखाई देती है, जहाँ लेखक अपने जीवन के संघर्षों के माध्यम से सामाजिक विषमता का उद्घाटन करता है।

संरचनात्मक दृष्टि से दलित आत्मकथाएँ रैखिक कथानक का अनुसरण अवश्य करती हैं, किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उन घटनाओं के माध्यम से सामाजिक संरचना की आलोचना करना होता है। इसलिए इन आत्मकथाओं में स्मृति और अनुभव का गहन अन्तर्सम्बन्ध दिखाई देता है। स्मृतियाँ केवल अतीत की पुनरावृत्ति नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान की चेतना को निर्मित करती हैं और भविष्य की दिशा निर्धारित करती हैं। इस प्रकार दलित आत्मकथा 'स्मृति–लेखन' का भी एक महत्त्वपूर्ण रूप बन जाती है, जिसमें इतिहास के उन पक्षों को सामने लाया जाता है, जिन्हें मुख्यधारा के इतिहास–लेखन ने उपेक्षित किया है।[4]

दलित आत्मकथाओं की संवेदना बहुआयामी है, जिसमें पीड़ा, अपमान, आक्रोश, विद्रोह, संघर्ष और आत्मसम्मान की आकांक्षा प्रमुख रूप से विद्यमान रहती है। इन कृतियों में वर्णित पीड़ा केवल भावुकता नहीं है, बल्कि वह एक ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है। जातिगत भेदभाव, छुआछूत, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक शोषण की घटनाएँ दलित संवेदना को गहराई प्रदान करती हैं। कौशल्या बैसंत्री की दोहरा अभिशाप में यह संवेदना और भी तीव्र रूप में उभरती है, जहाँ दलित स्त्री को 'दोहरे अभिशाप'–जाति और लिंग–का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार दलित आत्मकथाओं में स्त्री संवेदना एक विशेष विमर्श के रूप में विकसित होती है, जो दलित साहित्य को और अधिक व्यापक और गहन बनाती है।[5]

दलित आत्मकथाओं की संवेदना का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष उनका विद्रोही स्वर है। यह विद्रोह केवल सामाजिक अन्याय के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि उन सांस्कृतिक और वैचारिक संरचनाओं के विरुद्ध भी है, जिन्होंने दलितों को सदियों तक दासता और हीनता के बन्धनों में जकड़े रखा। भीमराव अम्बेडकर के विचार–विशेषतः समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धान्त–दलित आत्मकथाओं की वैचारिक पृष्ठभूमि को निर्मित करते हैं। अम्बेडकरवादी चेतना ने दलित लेखकों को यह आत्मविश्वास प्रदान किया कि वे अपने अनुभवों को निर्भीकता से

व्यक्त कर सकें और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा सकें। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के दस्तावेज भी हैं।[6]

दलित आत्मकथाओं में भाषा और शैली का स्वरूप भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन कृतियों की भाषा सरल, सहज और बोलचाल के निकट होती है, जिसमें स्थानीय शब्दावली, मुहावरे और लोक–प्रयोगों का व्यापक उपयोग किया जाता है। यह भाषा किसी कृत्रिम साहित्यिकता का सहारा नहीं लेती, बल्कि सीधे जीवन से जुड़ी हुई होती है। यही कारण है कि दलित आत्मकथाओं की भाषा में एक प्रकार की तीक्ष्णता और मारकता दिखाई देती है, जो पाठक को झकझोर देती है। यह भाषा 'साहित्यिक शिष्टता' के पार जाकर यथार्थ को उसकी पूरी नग्नता के साथ प्रस्तुत करती है।[7]

समकालीन परिप्रेक्ष्य में दलित आत्मकथाओं का स्वरूप और संवेदना निरन्तर विकसित हो रहे हैं। आज के दलित लेखक केवल ग्रामीण जीवन या पारम्परिक अनुभवों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे शहरी जीवन, शिक्षा, रोजगार, वैश्वीकरण और पहचान के संकट जैसे नए विषयों को भी अपनी आत्मकथाओं में शामिल कर रहे हैं। यशिका दत्त की कमिंग आउट ऐज दलित इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसमें आधुनिक समाज में दलित पहचान के जटिल प्रश्नों और अंतर्विरोधों को प्रस्तुत किया गया है। यह कृति दर्शाती है कि दलित आत्मकथा अब केवल अतीत के अनुभवों का लेखा–जोखा नहीं है, बल्कि वह वर्तमान सामाजिक यथार्थ और भविष्य की संभावनाओं का भी विश्लेषण करती है।[8]

दलित आत्मकथाओं का स्वरूप यथार्थवादी, अनुभवप्रधान, प्रतिरोधात्मक और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध है, जबकि उनकी संवेदना पीड़ा, संघर्ष, विद्रोह और आत्मसम्मान की आकांक्षा से निर्मित होती है। यह साहित्य न केवल दलित समाज के जीवन–संघर्ष का साक्ष्य प्रस्तुत करता है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की स्थापना के लिए एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप भी करता है। इस दृष्टि से दलित आत्मकथाएँ हिन्दी साहित्य में एक नई दिशा और दृष्टि का उद्घाटन करती हैं, जो साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और यथार्थपरक बनाती है।

विश्लेषण –

दलित आत्मकथाओं की संवेदना का सबसे प्रमुख और मूल स्वर पीड़ा तथा अपमान की अनुभूति है। ये आत्मकथाएँ केवल व्यक्तिगत दुख का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि उस सामूहिक ऐतिहासिक वेदना को अभिव्यक्त करती हैं जिसे दलित समाज ने सदियों से सामाजिक बहिष्कार, छुआछूत, जातिगत तिरस्कार और मानवीय अपमान के रूप में सहा है। दलित आत्मकथा–लेखक अपने जीवन के माध्यम से उस कठोर यथार्थ को सामने लाता है जिसमें जन्म के आधार पर मनुष्य की गरिमा को नकार दिया जाता है। इसीलिए इन रचनाओं में वर्णित पीड़ा मात्र भावुक करुणा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के अमानवीय स्वरूप का साक्ष्य बनकर सामने आती है।

दलित आत्मकथाओं में विद्यालय, कार्यस्थल, धार्मिक स्थलों और सार्वजनिक जीवन के अनेक प्रसंगों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार दलित व्यक्ति को बचपन से ही हीनता और अपमान का अनुभव कराया जाता है। विद्यालयों में अलग बैठाना, पानी के बर्तनों को छूने से रोकना, जातिसूचक शब्दों से पुकारना तथा योग्यता के बावजूद सम्मान न मिलनाकृये घटनाएँ दलित चेतना को गहरे रूप में प्रभावित करती हैं। कार्यस्थलों पर भी उनकी क्षमता की अपेक्षा उनकी जाति को देखा जाता है, जिससे उनके आत्मसम्मान को निरंतर ठेस पहुँचती है। मंदिरों और धार्मिक आयोजनों में प्रवेश निषेध या भेदभाव की स्थितियाँ इस पीड़ा को और अधिक तीव्र बनाती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' जैसी आत्मकथाओं में यह पीड़ा अत्यंत मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है, जहाँ लेखक ने बचपन से सहन किए गए अपमानों का यथार्थ चित्रण किया है। इसी प्रकार अन्य दलित आत्मकथाओं में भी अपमान की घटनाएँ केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं रह जातीं, बल्कि वे समूचे दलित समाज की नियति का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं।

दलित आत्मकथाओं में अस्मिता–बोध की संवेदना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये रचनाएँ दलित समाज की पहचान, आत्मस्वीकृति और आत्मसम्मान की स्थापना का माध्यम बनती हैं। सदियों तक सामाजिक व्यवस्था ने दलितों की पहचान को हीनता और अपमान से जोड़कर देखा, परंतु दलित आत्मकथा–लेखक अपनी जातिगत पहचान को छिपाने के स्थान पर उसे स्वीकार करता है और उसे गरिमा प्रदान करता है। यह स्वीकृति ही अस्मिता–बोध का प्रथम चरण है। इन आत्मकथाओं में लेखक यह स्पष्ट करता है कि दलित होना कोई अपराध

नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था का निर्मित अन्याय है। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ दलित अस्मिता के पुनर्निर्माण और स्वाभिमान की चेतना को अभिव्यक्त करती हैं।

दलित आत्मकथाओं में पीड़ा और अपमान के साथ–साथ संघर्ष और जिजीविषा का स्वर भी अत्यंत मुखर है। इन रचनाओं का उद्देश्य केवल करुणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि संघर्ष की प्रेरणा देना भी है। दलित पात्र जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों से हार नहीं मानता, बल्कि शिक्षा, श्रम, आत्मविश्वास और दृढ़ इच्छाशक्ति के माध्यम से अपने लिए सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने का प्रयास करता है। विपन्नता, सामाजिक तिरस्कार और अवसरों की कमी के बावजूद आगे बढ़ने की यह आकांक्षा दलित आत्मकथाओं को प्रेरणादायी बनाती है। यह संवेदना बताती है कि दलित जीवन केवल पीड़ा की कथा नहीं, बल्कि जिजीविषा और संघर्ष की महागाथा भी है।

दलित आत्मकथाओं में विद्रोह और प्रतिकार की संवेदना एक केंद्रीय तत्व के रूप में उपस्थित रहती है। ये रचनाएँ उस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध दर्ज करती हैं जिसने दलितों को सदियों तक अधिकारों से वंचित रखा। लेखक जातिगत अन्याय, धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक भेदभाव और पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाता है। यह विद्रोह केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि वैचारिक और सामाजिक स्तर पर परिवर्तन की माँग करता है। दलित आत्मकथाओं का यह प्रतिरोध उन्हें मात्र साहित्यिक अभिव्यक्ति न बनाकर सामाजिक आंदोलन का अंग बना देता है।

दलित आत्मकथाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मनुष्य की गरिमा और समानता की स्थापना है। इन रचनाओं में दलित लेखक बार–बार इस प्रश्न को उठाता है कि यदि सभी मनुष्य समान हैं तो फिर जाति के आधार पर भेदभाव क्यों? इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ मनुष्य की स्वतंत्रता, सम्मान, समान अवसर और सामाजिक न्याय की माँग करती हैं। इनका मूल आग्रह यह है कि दलित को दया नहीं, बल्कि सम्मान और अधिकार चाहिए। मानवीय गरिमा की यह संवेदना दलित साहित्य को सार्वभौमिक मानवतावादी दृष्टि प्रदान करती है।

दलित आत्मकथाओं में शिक्षा को मुक्ति और सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। अनेक आत्मकथा–लेखकों ने अपने जीवनानुभवों के माध्यम से यह दिखाया है कि शिक्षा ने उन्हें आत्मचेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक प्रतिरोध की शक्ति प्रदान की। शिक्षा के माध्यम से दलित व्यक्ति न केवल आर्थिक रूप से सशक्त होता है, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध वैचारिक रूप से भी जागरूक बनता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर के "शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो" के संदेश की स्पष्ट छाप दलित आत्मकथाओं में दिखाई देती है। अतः शिक्षा की संवेदना इन रचनाओं में सामाजिक मुक्ति और परिवर्तन की आधारशिला के रूप में स्थापित होती है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित आत्मकथाएँ हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट और सशक्त विधा के रूप में स्थापित हो चुकी हैं, जिनका स्वरूप और संवेदना परंपरागत आत्मकथा–लेखन से भिन्न एवं अधिक व्यापक सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ है। इन आत्मकथाओं का मूल स्वरूप व्यक्तिगत जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति होते हुए भी सामूहिक दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ 'मैं' की सीमाएँ 'हम' के व्यापक दायरे में रूपांतरित हो जाती हैं। दलित आत्मकथाओं की संवेदना गहन यथार्थपरकता, तीव्र मार्मिकता और प्रतिरोध की चेतना से अनुप्राणित है। इनमें व्यक्त पीड़ा, अपमान, संघर्ष, वंचना तथा आत्मसम्मान की खोज केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की विसंगतियों का उद्घाटन भी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, श्योराज सिंह बेचैन की मेरा बचपन मेरे कंधों पर तथा मोहनदास नैमिशराय की अपने–अपने पिंजरे जैसी कृतियाँ इस संवेदनात्मक तीव्रता और सामाजिक यथार्थ के सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इन आत्मकथाओं का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे केवल शोषण और पीड़ा का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उसके विरुद्ध संघर्ष, प्रतिरोध और परिवर्तन की चेतना को भी अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार ये कृतियाँ दलित अस्मिता के निर्माण, आत्मगौरव की पुनर्स्थापना तथा सामाजिक न्याय के मूल्यों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलित आत्मकथाओं का स्वरूप और संवेदना हिन्दी साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं, जो उसे अधिक यथार्थपरक, मानवीय और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बनाते हैं। ये आत्मकथाएँ न केवल साहित्यिक

अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप भी हैं, जिनकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में और भी अधिक बढ़ जाती है।

संदर्भ –

[1] वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 25.
[2] मुर्दहिया, तुलसीराम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 32.
[3] नैमिशराय, मोहनदास. अपने–अपने पिंजरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 18.
[4] माने, लक्ष्मण. उपरा, ग्रंथाली, मुंबई, 1980, पृष्ठ 10.
[5] बैसंत्री, कौशल्या. दोहरा अभिशाप, किताब घर, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 41.
[6] अम्बेडकर, भीमराव. जाति का उच्छेद, नवयाना पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 45.
[7] वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 67.
[8] दत्त, यशिका. कमिंग आउट ऐज दलित, एलेफ बुक कंपनी, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 56.